अमूल्य तत्त्व विचार

(श्री युगलजी कृत)

(हरिगीतिका)

बहु पुण्य-पुंज प्रसंग से शुभ देह मानव का मिला।
तो भी अरे! भव चक्र का, फेरा न एक कभी टला।।१।।
सुख-प्राप्ति हेतु प्रयत्न करते, सुक्ख जाता दूर है।
तू क्यों भयंकर भाव-मरण, प्रवाह में चकचूर है।।२।।
लक्ष्मी बढ़ी अधिकार भी, पर बढ़ गया क्या बोलिये।
परिवार और कुटुम्ब है क्या? वृद्धिनय पर तोलिये।।३।।
संसार का बढ़ना अरे! नर देह की यह हार है।
नहिं एक क्षण तुझको अरे! इसका विवेक विचार है।।४।।
निर्दोष सुख निर्दोष आनन्द, लो जहाँ भी प्राप्त हो।
यह दिव्य अन्ततत्त्व जिससे, बन्धनों से मुक्त हो।।५।।
पर वस्तु में मूर्छित न हो, इसकी रहे मुझको दया।
वह सुख सदा ही त्याज्य रे! पश्चात् जिसके दुख भरा।।६।।
मैं कौन हूँ? आया कहाँ से? और मेरा रूप क्या?
सम्बन्ध दुखमय कौन है? स्वीकृत करूँ परिहार क्या।।७।।
इसका विचार विवेकपूर्वक, शान्त होकर कीजिये।
तो सर्व आत्मिकज्ञान के, सिद्धान्त का रस पीजिये।।८।।
किसका वचन उस तत्त्व की, उपलब्धि में शिवभूत है।
निर्दोष नर का वचन रे! वह स्वानुभूति प्रसूत है।।९।।
तारो अरे! तारो निजात्मा, शीघ्र अनुभव कीजिये।
सर्वात्म में समदृष्टि दो, यह वच हृदय लख लीजिये।।१०।।

****

एक देखिये, जानिये, रमि रहिये इक ठौर।
समल, विमल न विचारिये, यही सिद्धि नहीं और।।

आलोचना पाठ

(श्री जौहरीलालजी कृत)

(दोहा)

बंदौं पाँचों परम-गुरु, चौबीसों जिनराज।
करूँ शुद्ध आलोचना, शुद्धिकरन के काज।।१।।

(सखी छन्द)

सुनिये जिन अरज हमारी, हम दोष किये अति भारी।
तिनकी अब निर्वृत्ति काज, तुम सरण लही जिनराज।।२।।
इक बे ते चउ इन्द्री वा, मनरहित सहित जे जीवा।
तिनकी नहिं करुणा धारी, निरदइ ह्वै घात विचारी।।३।।
समरंभ समारंभ आरंभ, मन-वच-तन कीने प्रारंभ।
कृत-कारित-मोदन करिकैं, क्रोधादि चतुष्टय धरिकैं।।४।।
शत आठ जु इमि भेदनतैं, अघ कीने परिछेदनतैं।
तिनकी कहुँ कोलों कहानी, तुम जानत केवलज्ञानी।।५।।
विपरीत एकांत विनय के, संशय अज्ञान कुनय के।
वश होय घोर अघ कीने, वचतैं नहिं जाय कहीने।।६।।
कुगुरुन की सेवा कीनी, केवल अदयाकरि भीनी।
या विधि मिथ्यात बढ़ायो, चहुँगति मधि दोष उपायो।।७।।
हिंसा पुनि झूठ जु चोरी, पर-वनितासों दृग जोरी।
आरंभ परिग्रह भीने, पन पाप जु या विधि कीने।।८।।
सपरस रसना घ्रानन को, चखु कान विषय-सेवन को।
बहु करम किये मनमाने, कछु न्याय-अन्याय न जाने।।९।।
फल पंच उदुंबर खाये, मधु मांस मद्य चित चाहे।
नहिं अष्ट मूलगुण धारे, सेये विषयन दुखकारे।।१०।।
दुइवीस अभख जिन गाये, सो भी निस दिन भुंजाये।
कछु भेदाभेद न पायो, ज्यों त्यों करि उदर भरायो।।११।।

अनंतानु जु बंधी जानो, प्रत्याख्यान अप्रत्याख्यानो।
संज्वलन चौकड़ी गुनिये, सब भेद जु षोडश मुनिये।।१२।।
परिहास अरति रति शोक, भय ग्लानि तिवेद संयोग।
पनबीस जु भेद भये इम, इनके वश पाप किये हम।।१३।।
निद्रावश शयन कराया, सुपने मधि दोष लगाया।
फिर जागि विषय-वन धायो, नानाविध विष-फल खायो।।१४।।
किये आहार निहार बिहारा, इनमें नहिं जतन विचारा।
बिन देखा धरा उठाया, बिन शोधा भोजन खाया।।१५।।
तब ही परमाद सतायो, बहुविधि विकलप उपजायो।
कछु सुधि बुधि नाहिं रही है, मिथ्यामति छाय गई है।।१६।।
मरजादा तुम ढिंग लीनी, ताहू में दोष जु कीनी।
भिन भिन अब कैसें कहिये, तुम ज्ञानविषैं सब पइये।।१७।।
हा हा! मैं दुठ अपराधी, त्रस-जीवन-राशि विराधी।
थावर की जतन न कीनी, उर में करुणा नहिं लीनी।।१८।।
पृथ्वी बहु खोद कराई, महलादिक जागां चिनाई।
बिन गाल्यो पुनि जल ढोल्यो, पंखातैं पवन विलोल्यो।।१९।।
हा हा! मैं अदयाचारी, बहु हरितकाय जु विदारी।
तामधि जीवन के खंदा, हम खाये धरि आनंदा।।२०।।
हा हा! परमाद बसाई, विन देखे अगनि जलाई।
ता मध्य जीव जु आये, ते हू परलोक सिधाये।।२१।।
बींध्यो अन राति पिसायो, ईंधन बिन सोधि जलायो।
झाड़ू ले जागा बुहारी, चिंवटी आदिक जीव बिदारी।।२२।।
जल छानि जिवानी कीनी, सो हू पुनि डारि जु दीनी।
नहिं जल-थानक पहुँचाई, किरिया बिन पाप उपाई।।२३।।
जल-मल मोरिन गिरवायो, कृमि-कुल बहु घात करायो।
नदियन विच चीर धुवाये, कोसन के जीव मराये।।२४।।

अन्नादिक शोध कराई, तामधि जु जीव निसराई।
तिनको नहिं जतन करायो, गलियारैं धूप डरायो।।२५।।
पुनि द्रव्य कमावन काजे, बहु आरंभ हिंसा साजे।
किये तिसनावश अघ भारी, करुना नहिं रंच विचारी।।२६।।
इत्यादिक पाप अनंता, हम कीने श्री भगवंता।
संतति चिरकाल उपाई, वानी तैं कहिय न जाई।।२७।।
ताको जु उदय अब आयो, नानाविध मोहि सतायो।
फल भुंजत जिय दुख पावै, वचतैं कैसें कहि जावे।।२८।।
तुम जानत केवलज्ञानी, दुःख दूर करो शिवथानी।
हम तो तुम शरण लही है, जिन तारन विरद सही है।।२९।।
जो गाँवपती इक होवे, सो भी दुखिया दुख खोवै।
तुम तीन भुवन के स्वामी, दुख मेटहु अंतरजामी।।३०।।
द्रौपदि को चीर बढ़ायो, सीता प्रति कमल रचायो।
अंजन-से किये अकामी, दुख मेटहु अंतरजामी।।३१।।
मेरे अवगुन न चितारो, प्रभु अपनो विरद निहारो।
सब दोषरहित करि स्वामी, दुख मेटहु अंतरजामी।।३२।।
इंद्रादिक पद नहिं चाहूँ, विषयनि में नाहिं लुभाऊँ।
रागादिक दोष हरीजै, परमातम निज-पद दीजै।।३३।।

(दोहा)

दोषरहित जिनदेवजी, निजपद दीजे मोय।
सब जीवन के सुख बढ़ै, आनंद मंगल होय।।३४।।
अनुभव माणिक पारखी, 'जौहरि' आप जिनन्द।
ये ही वर मोहि दीजिये, चरण शरन आनन्द।।३५।।

निज स्वरूप को परम रस, जामैं भरो अपार।
बन्दूँ परमानन्दमय, समयसार अविकार।।